प्रवचन नं. ११५ गाथा ४४ दिनाङ्क २२-१०-१९७८, रविवार
आसोज कृष्ण १, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, ४४ गाथा चलती है। फिर से टीका शुरुआत से (लेते हैं।) टीका है न? **यह समस्त अध्यवसानादिभाव..** हैं। अर्थात् क्या कहा? कि अन्दर में राग की एकताबुद्धि—ऐसा जो अध्यवसाय-मिथ्यात्व, वह पुद्गल का परिणाम है, जीव का नहीं। ऐसे अन्दर दया, दान, पूजा, भक्ति आदि व्रत, तप, का भाव-राग है। यह राग है, वह सब पुद्गल का परिणाम है (-ऐसा) भगवान ने कहा है। आहाहा!

विश्व के (समस्त पदार्थों के) साक्षात् देखनेवाले भगवान.. समस्त पदार्थों को साक्षात् ज्ञान की पर्याय में तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को देखनेवाले भगवान **(वीतराग-सर्वज्ञ) अरहन्तदेवों के द्वारा,** आहाहा! **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय कहे गये होने से..** यह अन्दर जो शुभाशुभराग होता है, उसे भगवान ने दिव्यध्वनि द्वारा (कहा) कि वह पुद्गल का परिणाम है, आत्मा का नहीं। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन, जड़, यह तो आत्मा के नहीं; ये तो मिट्टी-पुद्गल के जड़ हैं, आहाहा! परन्तु अन्दर में हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग वासना—ऐसे जो पाप के परिणाम और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण—यह भाव, पुण्य-राग है। इस राग को भगवान तीर्थंकरों ने इसे पुद्गलद्रव्य (के) परिणाम कहे हैं। आहा! यह लोगों को पता नहीं होता और हम धर्म करते हैं, आहाहा! हैं? **इसलिए वे चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं हैं..** कौन? अन्दर जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण—ऐसा भाव, वह पुद्गलद्रव्य का-जड़ का परिणाम है; वह आत्मा के (परिणाम) नहीं। आहाहा!

वे चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं हैं.. आहाहा! शुभयोग की क्रिया, जो राग की, वह चैतन्यस्वभाव—ऐसा जो जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं हैं। आहाहा! कठोर बात है, भाई! शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार-धन्धा, वह तो परचीज है; वह तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं है। आहाहा! यहाँ तो अरिहन्तदेव सर्वज्ञ-वीतराग परमात्मा ऐसा कहते हैं कि यह पुण्य और पाप के भाव, पुद्गलद्रव्य के

परिणाम होने से चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य होने के लिए समर्थ नहीं है। आहाहा! चैतन्यस्वभाव, ज्ञायकस्वभाव, ज्ञायकभाव, सत्यार्थभाव, भूतार्थभाव, ज्ञायकभाव, शुद्धभाव—ऐसा जो जीवभाव (है), वह विकार, यह जीव भाव होने के लिए समर्थ नहीं है। अरे! ऐसी व्याख्या अब! है? यह तो कल आ गया है।

जो जीवद्रव्य.. भगवान आत्मा कौन है? भगवान ऐसा कहते हैं। आहा! अन्दर जीववस्तु - आत्मपदार्थ अनन्त.. अनन्त ज्ञान-आनन्द का भण्डार प्रभु, वह जीवद्रव्य, चैतन्यभाव से शून्य - ऐसे पुद्गल द्रवय से अतिरिक्त (भिन्न) है। जो पुद्गल - पुण्य और पाप के, दया, दान और व्रत के भाव, पुद्गलद्रव्य के परिणाम कहे, वे चैतन्यभाव से शून्य है, वह (चैतन्यभाव) ऐसे पुद्गलद्रव्य से तो भिन्न है जीवद्रव्य। आहाहा! पाटनीजी! सूक्ष्म बातें हैं।

श्रोता : भाव करता तो जीव दिखता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव में नहीं है। मानता है। अनादि से पागलपना है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं, आहाहा! कि यह शरीर, वाणी—यह तो मिट्टी-जड़-धूल (है), यह तो आत्मा की नहीं, परन्तु आत्मा में होनेवाले पुण्य और पाप के भाव भी पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न हुए परिणाम हैं इसके। वह जीवद्रव्य, चैतन्यभाव से शून्य—ऐसे पुद्गलद्रव्य से तो जीवद्रवय को भिन्न कहा गया है। आहाहा!

नव तत्त्व है न? नव तत्त्व—जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध और मोक्ष। जो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, वे पुण्यतत्त्व में जाते हैं; हिंसा, झूठ, चोरी, काम-भोग, यह कमाना, कमाने का भाव आदि जो हैं, वे पाप में जाते हैं; आहाहा! ये दो होकर आस्रव है, वह भी पुद्गल के परिणाम में जाता है और उस राग में अटकता है - ऐसा भावबन्ध, वह भी पुद्गल परिणाम में जाता है, आहाहा!—ऐसा सूक्ष्म है! उस पुद्गलद्रव्य को, जीवद्रव्य से, चैतन्यभाव से शून्य—ऐसा जो पुद्गलद्रव्य अथवा उसके जो परिणाम, उनसे तो जीवद्रव्य को भिन्न कहा गया है। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर अरिहन्त सर्वज्ञ भगवान, तीन काल-तीन लोक को साक्षात् देखनेवाले ने तो यह कहा है न प्रभु! आहाहा! जिनके शास्त्र में राग से आत्मा को लाभ होता है और

राग आत्मा का (है—ऐसा कहा है), वह शास्त्र भगवान का नहीं है। आहाहा! वह भगवान की वाणी नहीं है, वे भगवान के शास्त्र नहीं है और जो गुरु नाम धराकर ऐसा कहे कि राग आत्मा का है; ये दया, दान आदि; और इनसे आत्मा भिन्न नहीं है (तो), वह भी मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं है। आहाहा! कठोर बातें हैं! थोड़ी-सी लाईन में बहुत अधिक भरा है। आहाहा!

जीवद्रव्य भगवान आत्मा, चैतन्यस्वरूप प्रभु, ज्ञायकभाव अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा (है।) आहा! जैसे स्फटिकमणि निर्मल है; वैसे भगवान आत्मा निर्मल शुद्ध पवित्र भगवान है। ऐसा जो जीवद्रव्य (है) वह.. चैतन्यभाव से शून्य.. कौन? पुद्गल, जिस पुद्गल में चैतन्यस्वभाव नहीं, उस राग में भी चैतन्यस्वभाव नहीं—ऐसा है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का विकल्प उठता है, अपवास करना आदि का राग (होता है), वह चैतन्यस्वभाव से शून्य है। अरे! थोड़ी-थोड़ी गुजराती समझते हो न? यहाँ तो यह सब गुजराती है न? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, भगवान! भगवान त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं; आहाहा! जबकि अब अभी ऐसा कहते हैं कि अभी शुभयोग ही है (इसका अर्थ यह हुआ कि) अर्थात् आत्मा नहीं—ऐसा। प्रभु, प्रभु क्या करे उसे बुद्धि (में न जमे तो) आहाहा!

जीववस्तु.. ये पुण्य-पाप के भाव जो पुद्गल-द्रव्य के परिणाम है, उन चैतन्यभाव से शून्य—ऐसे पुद्गलद्रव्य से अतिरिक्त (भिन्न) जीवद्रव्य को कहा गया है। ऐसा तो स्पष्ट है! आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा, चैतन्य निर्मलानन्द प्रभु, शुद्ध वीतरागस्वभावी आत्मा—ऐसा जो चैतन्यस्वभाव जीवद्रव्य, उससे—चैतन्य से शून्य ऐसे पुण्य-पाप के भाव जो पुद्गलद्रव्य है, उससे तो भगवान आत्मा को अतिरिक्त-भिन्न कहा गया है। आहाहा! शशीभाई! यह तो कल हो गया था। (आज) शुरुआत से लिया है। कितने ही नये है न? आहाहा!

अन्दर भगवान जीवद्रव्य जो है, वह तो चैतन्यस्वभावी, वीतरागस्वभावी, जिनबिम्ब-जिनस्वरूपी प्रभु है। आहाहा! कैसे जँचे? ऐसा जिनस्वरूपी जीवद्रव्य.. वह अजैन स्वभावी—ऐसा पुण्य-पाप का भाव, जो पुद्गलद्रव्य है, उससे जीवद्रव्य को अतिरिक्त-भिन्न कहा गया है। आहाहा!

श्रोता : पाँच महाव्रत, वह अजैन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच महाव्रत (का) भाव, वह पुद्गलद्रव्य का परिणाम है; जीवद्रव्य से शून्य है। यह कठोर बात है, बापू! यह जैनधर्म समझना कोई.. वाड़ा में पड़े और माने कि हम जैन हैं। भाई! आत्मा जिनस्वरूपी वीतरागबिम्ब आत्मा है, अभी, हाँ! आहाहा! ऐसा जिन—

घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन।
मत मदिरा के पान सों मतवाला समझे न॥

अभिमानी मिथ्यात्व की शराब पीये हुए, पुण्य-पाप के भाव, वे जीवद्रव्य के हैं—ऐसा मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! शरीर, वाणी को अपना माने, वह तो फिर महामूढ़ है। वह तो परवस्तु-मिट्टी है। आहाहा! पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार वे तो पर-अत्यन्त भिन्न (हैं), उनके साथ तो कुछ सम्बन्ध नहीं, आहाहा! परन्तु अन्दर पुद्गल के भावकभाव के निमित्त के सम्बन्ध से हुए जो शुभ-अशुभभाव, वे चैतन्यभाव से शून्य हैं; आहाहा! इस कारण वह जीवद्रव्य,.. चैतन्यभाव से शून्य—ऐसे भावों से जीवद्रव्य भिन्न है। आहाहा! रतिभाई! वे तुम्हारे कारखाने और रुपये-पैसे कहाँ गये? ऐ अजीतभाई! यह सब बड़े पैसेवाले बैठे हैं—सात लाख-सत्तर लाख, करोड़पति - धूल के पति....

श्रोता : धूल के भी पति तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये मानते हैं, हैं कहाँ? यहाँ तो (अपने को) राग का पति (-स्वामी) माने कि मैं राग का स्वामी हूँ और राग मेरा.. प्रभु वीतराग सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि-मूढ़ है। उसे हमारे जैन की आज्ञा का पता नहीं है। आहाहा!

जैन परमेश्वर अनन्त तीर्थंकरों ने, वर्तमान विराजमान प्रभु सीमन्धर भगवान ने उसे ऐसा कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त स्वयं (महाविदेहक्षेत्र) गये थे न! अभी भगवान विराजमान हैं; वहाँ गये थे संवत् ४९ में। तो कहते हैं कि सर्वज्ञ तीर्थंकर तो ऐसा कहते हैं न! आहाहा! **केवलि जिणोहि भणिया**—कहा न पद में? **केवलि जिणोहि भणिया**—सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ऐसा कहते थे, आहाहा! कि जो दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम परलक्ष्य से हुआ, वह पर का है, पुद्गल का है; तेरा नहीं। आहाहा!

अरे.. ! सुनना कठिन पड़ता है ! त्रंबकभाई ! ऐसी बात है, भगवान ! दुनिया से अलग है, यह तो पता है न ! आहाहा ! चार लाईन में तो कितना.. अब फिर अधिक है। आहाहा !

एक तो यह कहा कि शुभ-अशुभ—पुण्य-पाप के भाव, वे पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से जीवद्रव्य से भिन्न है; और जीवद्रव्य उन चैतन्यभाव से शून्य—ऐसे परिणामों से जीव भिन्न है। चैतन्य ज्योति अन्दर, झलहल ज्योति भगवान आत्मा चैतन्य के नूर के तेज का पूर भरा है। भाई ! तुझे पता नहीं है, प्रभु ! अन्दर आत्मा चैतन्य के नूर अर्थात् तेज का पूर है वह अन्दर। ऐसा चैतन्य तत्त्व जो भगवान (है), उससे, यह पुण्य-पाप के परिणाम पुद्गलमय कहे हैं, वे चैतन्यस्वभाव से शून्य होने के कारण, उन परिणामों को जीवद्रव्य से भिन्न कहा है। जीवद्रव्य (को) उन परिणामों से भिन्न कहा है। उन परिणामों से जीवद्रव्य को भिन्न कहा है। आहाहा !

यह तो एक-दो लाईन में इतना भरा है, पढ़ते नहीं, भाई ! आहाहा ! अरे ! अनादि से चौरासी लाख (योनियों) में अवतार कर-करके दुःखी है यह। भले ही अरबोंपति, करोड़पति सेठिया हो, वे सब दुःखी हैं। भाई ! उसका—आनन्द का नाथ भगवान है, उसका इसे पता नहीं। उसे - यह लक्ष्मी आदि मेरी है—ऐसा मानकर यह ममता के दुःख का वेदन करता है। आहाहा ! जिसे यहाँ पुद्गल का परिणाम कहा है और जो ममता के परिणाम, जीवद्रव्य से (भिन्न हैं।) जीवद्रव्य... इन चैतन्य से शून्य (परिणामों) इनसे जीवद्रव्य को भिन्न कहा है। एक तो ये जीवद्रव्य से भिन्न पुण्य-पाप के परिणाम कहे और जीवद्रव्य पुण्य-पाप के परिणामों से भिन्न कहा है। आहाहा ! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमारा स्मरण करो—णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं—यह एक विकल्प और राग है प्रभु ! आहाहा ! वह राग, इस पुद्गलद्रव्य का परिणाम (है), तेरा नहीं। (यदि) तेरा होवे तो भिन्न नहीं पड़े, और भिन्न पड़े वे तेरे नहीं। आहाहा ! अरे ! ऐसा सुनने को मिलता नहीं और जिन्दगी ऐसी की ऐसी जाती है। यह व्रत करते हैं, अपवास करते हैं, और तप करते हैं.. आहाहा ! त्रिलोकचन्दजी ! ऐसा सुनने को नहीं मिलता वहाँ दिल्ली-फिल्ली में नहीं। ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा !

इसलिए जो इन अध्यवसानादिक को.. इसलिए जो अध्यवसान अर्थात् राग की

एकताबुद्धि और राग, दया-दान का राग, (उसे) **जीव कहते हैं, जो इन्हें जीव कहते हैं वे वास्तव में परमार्थवादी नहीं हैं..** वे सच्चा माननेवाले, सत्य माननेवाले नहीं हैं; वे झूठ माननेवाले हैं। है भाई अन्दर ? यह पुस्तक अलग प्रकार की है तुम्हारे से; इसमें—पाठ में ध्यान रखे तो समझ में आये - ऐसा है। वे तुम्हारी बहियाँ रुपयों की होती है न, धूल की, उससे अन्य प्रकार की बहियाँ हैं यह।

श्रोता : पन्ना फिरे और सोना झरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : झरे ? धूल में भी नहीं। क्या कहते हैं ? कि जो इन अध्यवसानादिक के जीव कहते हैं, जो ये पुण्य के परिणाम, दया, दान के राग को जीव कहते हैं जो; आहाहा! **वे वास्तव में परमार्थवादी नहीं हैं..** वे सत्य माननेवाले नहीं हैं, वे परमार्थ के तत्त्व को नहीं जानते। आहाहा!

क्योंकि, अब न्याय देते हैं—**आगम..** सर्वज्ञ की वाणीरूपी आगम, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी—ओमध्वनि—'ओम् ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रची आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे' आहाहा!—ऐसे जो भगवान त्रिलोकनाथ वर्तमान में तो विराजमान हैं प्रभु! (भगवान) महावीर आदि तो मोक्ष पधारे—सिद्ध हो गये हैं। ये तो—सीमन्धर भगवान तो अरिहन्तपद में विराजमान हैं। आहाहा! उनकी जो वाणी—आगम, वह भी ऐसा कहती है, कहते हैं। भगवान ने देखा, भगवान तो ऐसा कहते हैं, कहते हैं, परन्तु वाणी द्वारा कहते हैं न! भगवान ऐसा कहते हैं, आगम ऐसा कहता है। **युक्ति..** ऐसा कहती है, आहाहा! और **स्वानुभव से..** भी ऐसा ज्ञात होता है कि राग आत्मा का नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म विषय है, भाई!

अरे..रे! ऐसे की ऐसे जिन्दगी.. अनन्त काल बिताया है। आहाहा! बापू! यह नरक और निगोद में गया है। भगवान परमात्मा, निगोद में एक श्वाँस में अठारह भव करता है। यह आलू, शकरकन्द, मूली, गाजर में—एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव.. एक श्वास में अठारह भव.. मरे और जन्मे, मरे और जन्मे.. आहाहा! भाई! वे अनन्त दुःखी है। उन्हें संयोग अनुकूल नहीं है, प्रतिकूल, इसलिए नहीं; उनकी दशा में ही निगोद के जीव हीनदशारूप परिणम गये हैं। उन्हें दुःख का पार नहीं है, उस दुःख का

वेदन करनेवाले निगोद के जीव.. प्रभु! तूने एक श्वास में अठारह भव किये, परन्तु किसे देखना है ? अनन्त काल कहाँ बिताया, अनन्त, आहाहा! ऐसे भव अनन्त बार किये, एक बार नहीं। इस भव से निवर्तना होवे और जिसे आत्मा का ज्ञान करना होवे, उसे यह जानना पड़ेगा—ऐसा कहते हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ, सौ इन्द्रों से पूज्यनीय प्रभु जिनेश्वरदेव की यह वाणी है—यह आगम (है)। इसलिए जिस आगम में पुण्य के परिणाम को जीव का कहा हो, वह आगम नहीं, वह शास्त्र नहीं अथवा जिस आगम में, शुभभाव से जीव को लाभ होता है—ऐसा मनवाया हो, वह आगम नहीं है, वह सिद्धान्त नहीं है, वह वीतराग की वाणी नहीं है। आहाहा! **आगम, युक्ति..** युक्ति से भी यह जँचता है कि राग, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहाहा! दृष्टान्त कहेंगे।

स्वानुभव.. और राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञान करनेवाले धर्मी जीवों को वह (-आत्मा) राग से भिन्न जानने में आता है। आहाहा! भेदज्ञानियों को अर्थात् समकिती जीव को, अर्थात् धर्म की पहली सीढ़ीवाले जीव को स्वानुभव.. (से) वह (आत्मा) राग से भिन्न जानने में आता है। राग से भेद करके आत्मानुभव करे, आहाहा! ऐसे समकिती भेदज्ञानी को राग से भिन्न अनुभव में आता है। आहाहा! आगम में कहा है, युक्ति से जँचता है। अभी कहेंगे - और स्वानुभव गर्भित युक्ति भी साथ है ऐसा। एक राग का कण—जो व्रत, तप और भक्ति की - वृत्ति उत्पन्न होती है; उससे तो भेदज्ञानी समकिती जीव उसे (-आत्मा को) भिन्न करके अनुभव करता है। उसके अनुभव में वह राग नहीं आता। आहाहा! ऐसी बातें! अब किसी दिन सुनी न हो, किसकी होगी यह! यह वीतरागमार्ग ऐसा होगा ? भाई! अनादि तीर्थंकर परमात्मा का यही मार्ग है; ये त्रिकाल अनादि तीर्थंकर हुए, अनन्त होंगे; उनका यह मार्ग है।

यहाँ कहते हैं कि इन तीन से तो उनका पक्ष विरोध को प्राप्त होता है। किसका ? जो कोई, दया-दान-व्रत के परिणाम जीव के हैं—ऐसा जो मानते हैं, वह आगम से विरुद्ध है, युक्ति से विरुद्ध है और स्वानुभव से भी विरुद्ध है। अरे! ऐसी बातें! उसमें, **वे जीव नहीं हैं..** कौन ? वे अर्थात् ? राग की एकताबुद्धिरूपी मिथ्यात्वभाव और दया, दान आदि का राग-भाव, **वे जीव नहीं हैं..** वह आत्मा नहीं है, आहाहा!—ऐसा **यह सर्वज्ञ का वचन है,..**

है ? यह आगम, सर्वज्ञ का वचन - यह आगम। जिस आगम में, आहाहा! यह राग का शुभभाव, वह जीव नहीं; वह तो विकारी परिणाम है; भगवान तो निर्विकारी भिन्न चीज है—ऐसे भगवान की वाणी ऐसा कहती है। आहाहा! अरे..रे! पूरे दिन यह दुनिया की मजदूरी कर-करके.. व्यापार और स्त्री-पुत्र (को) सम्हालना.. अकेली पाप की मजदूरी, महा पाप की मजदूरी, अब इसे ऐसा सुनना कठिन पड़ता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यह तेरे पाप के परिणाम तो जीव के नहीं—ऐसा वीतराग ने कहा है, परन्तु शुभभाव—दया, दान, व्रत, उपवास करूँ आदि जो विकल्प उत्पन्न होता है, वह राग, जीवद्रव्य में नहीं है—ऐसा भगवान ने कहा है। भगवान आये, उनकी वाणी—आगम आयो-दो; और गुरु स्वयं यह मुनि कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तुझे कहाँ मीठास चढ़ी है नाथ! ऐसा कहते हैं। तेरा अमृतसागर भगवान समुद्र, आहाहा! का अनुभव करना छोड़कर इस राग को अनुभव में कहाँ - जहर के प्याले कहाँ चढ़ गया तू ? आहाहा! ये पुद्गल के परिणाम तेरे जीव से भिन्न है—ऐसा भगवान की वाणी कहती है, भगवान कहते हैं और वाणी अर्थात् आगम कहता है तथा गुरु—तीनों ऐसा कहते हैं। जो गुरु ऐसा कहे कि राग करने से आत्मा को लाभ होता है, वे गुरु नहीं हैं। जो गुरु ऐसा कहे कि दया, दान के परिणाम, वे जीव के हैं, वे गुरु नहीं हैं। जो आगम, राग को आत्मा का कहे या राग से आत्मा को लाभ होता है—ऐसा कहे, वह आगम नहीं है और जो कोई भगवान त्रिलोकनाथ नाम धराये और ऐसा कहे कि राग से जीव को लाभ होता है, वह भगवान नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। हैं ?

श्रोता : खतोनी ही अलग प्रकार की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है, बापू! आहाहा! उधार खाते को जमा खाते में लगा देता है। नाम-नामा, उधार खाता होवे, उसे जमा खाता (कर डालता है।) पुण्य-पाप का भाव देना- खाता (है) उधार खाता (है)। उसे आत्मा का है लेना—ऐसा (जमा) खाता डालता है। ऐसी बात है! अरे! ऐसा कैसा उपदेश यह ? बापू! अनादि का ऐसा मार्ग है! भाई! तीर्थंकर जिनेश्वर का (मार्ग ऐसा है।)

उसमें, 'वे जीव नहीं हैं' यह सर्वज्ञ का वचन है, वह तो आगम है.. देखा ? यह

दया, दान, व्रत का परिणाम—ये शुभ, ये जीव नहीं हैं—ऐसा आगम का वचन है। जो आगम ऐसा कहता है कि शुभभाव से जीव को लाभ होता है, वह भगवान का आगम नहीं है; कल्पित बनाये हुए शास्त्र, (वे आगम नहीं है।) आहाहा! **और यह (निम्नोक्त) स्वानुभवगर्भित युक्ति है..** दो साथ लेते हैं। आगम, युक्ति और स्वानुभव—ऐसे तीन कहे हैं न? भगवान का आगम—जैन तीर्थंकर त्रिलोकनाथ का आगम.. 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे'—और वे गणधर शास्त्र रचें, वह वीतराग की वाणी (है), उसमें ऐसा कहा है। आहाहा! **और निम्नोक्त स्वानुभवगर्भित युक्ति..** क्या?

स्वयमेव उत्पन्न हुए राग-द्वेष के द्वारा मलिन अध्यवसान हैं,.. ये शुभ-अशुभभाव तो स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं; द्रव्य से नहीं। आहाहा! पुद्गलद्रव्य के परिणाम, वे पर के लक्ष्य से हुए हैं। **स्वयमेव उत्पन्न हुए..** ऐसे राग-द्वेष द्वारा मलिन अध्यवसान से भिन्न-अन्य चित्स्वभावरूप जीव... आहाहा! क्या कहते हैं? बापू! यह तो भगवान की वाणी (है), यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा! यह तो त्रिलोकनाथ आत्मा की भागवत् कथा है, प्रभु! आहाहा! इसमें ऐसा कहा है कि राग-द्वेष द्वारा मलिन ऐसे जो भाव—**अध्यवसान, वे जीव नहीं हैं क्योंकि कालिमा से भिन्न सुवर्ण की भाँति;..** पहले दृष्टान्त दिया था कि कोयले की कालिमा कोयले से भिन्न नहीं है, वैसे पुण्य और पाप, जीव से भिन्न भाव नहीं है—ऐसा उसने (तर्क करनेवाले ने) कहा था। तब यहाँ कहते हैं (कि) सुन! कि कोयले की कालिमा, वह कोयले में गयी; वह यहाँ नहीं परन्तु सुवर्ण में जो मलिनता दिखती है, उस मैल से सुवर्ण भिन्न चीज है। उस मैल में जो कालिमा सुवर्ण में दिखती है.. आहाहा! **सुवर्ण की भाँति..** कालिमा से भिन्न सुवर्ण अर्थात् सोना, उसमें जो मैल दिखता है, उससे सुवर्ण अलग है। आहाहा! भिन्न कालिमा से भिन्न सुवर्ण की भाँति, आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, वह प्रभु—आत्मा सुवर्ण के समान है; उसमें यह पुण्य-पाप का मैल-काजल जैसा मैल है, वह सुवर्ण की जाति नहीं है। आहाहा!

कालिमा से भिन्न सुवर्ण की भाँति.. ऐसे राग से **भिन्न अन्य चित्स्वभावरूप जीव..** आहाहा! इन दया, दान, व्रत के विकल्प से भिन्न.. **अन्य चित्स्वभावरूप जीव भेदज्ञानियों के द्वारा..** राग से भिन्न (भेदज्ञान) करनेवाले भेदज्ञानियों के द्वारा, राग से भिन्नता करनेवाले

समकिती द्वारा आहाहा! **स्वयं उपलभ्यमान है...** आहाहा! इससे (-राग से) भिन्न जीव भेदज्ञानियों द्वारा स्वयं उपलभ्यमान। राग से प्राप्त नहीं होता। राग भिन्न है। इससे (आत्मा से) स्वयं आत्मा का लाभ होता है। आहाहा! रागरूपी मैल को भेदज्ञानी धर्मी जीव, उसे भिन्न करके जीव का अनुभव करता है; इस कारण जीव के स्वभाव से वह राग भिन्न है। आहाहा! राग से भेदज्ञान करनेवालों को राग, भेदज्ञान में राग साथ में नहीं आता। आहाहा!

अरे! ऐसी बात! अब, ऐसा जैनमार्ग होगा? अभी तक तो हमने यह छह काय की दया पालो, 'इच्छामि पडिकमणं ईरिया वहीआतस्स उतसे करणेणं माणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ताऊं काय ठाणेण..' जयन्तीभाई! बापू! सब पता है, बापू! हमने भी सब किया था न, बापू! मार्ग दूसरा, भाई! तुझे पता नहीं। आहाहा!

तीन न्याय दिये— एक तो पुण्य-पाप के भाव, जीव नहीं—ऐसा भगवान की वाणी कहती है। अब युक्ति और स्वानुभव दो—कि सुवर्ण की मलिनता जैसे सुवर्ण से भिन्न है, यह युक्ति, ऐसे भगवान आत्मा से पुण्य-पाप के भाव भिन्न हैं, यह युक्ति का न्याय; तीसरा—स्वानुभवगर्भित; आहाहा! धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जो दया, दान के राग से भिन्न जीव का अनुभव करे, उस भेदज्ञानी द्वारा स्वयं राग के अवलम्बन बिना, चैतन्य के अवलम्बन से स्वयं अनुभव होता है। वह राग से भिन्न-पृथक् का अनुभव करता है। आहाहा! अब ऐसी बातें! हैं?

एक तो भगवान ने ऐसा कहा कि ये पुण्य-पाप, वह जीव नहीं है क्योंकि कालिमा से भिन्न सुवर्ण की तरह, इस राग से **भिन्न अन्य चित्स्वरूप जीव भेदज्ञानियों द्वारा स्वयं उपलभ्यमानम्** अर्थात् जो राग का विकल्प है, उसके अवलम्बन बिना, चैतन्य के अवलम्बन से स्वयमेव आत्मा, राग से भिन्न अनुभव में आता है; इसलिए यह राग, आत्मा का नहीं है। ऐसी बातें हैं। (निर्णय) करना पड़ेगा, बापू! दुनिया माने या मनवा बैठे, इससे कहीं तुझे लाभ नहीं होगा, भाई! यह देह छूटकर कहाँ जाएगा प्रभु? आत्मा का नाश होवे - ऐसा है? भगवान तो नित्य अनादि-अनन्त वस्तु अन्दर है। आहाहा! उसे यदि राग से लाभ होता है—ऐसा माना तो प्रभु! तू मिथ्याभ्रम में जाएगा और रहेगा तथा परिभ्रमण करेगा। आहाहा!

भगवान ने ऐसा कहा और कहा, वह आगम ने ऐसा कहा तथा आगम में गुरु ऐसा

स्वयं कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य - पंचम काल के सन्त-गुरु ऐसा कहते हैं आहाहा! कि अरे..रे प्रभु! (अभी तो) यह कहते हैं कि पंचम काल में तो शुभयोग ही होता है.. प्रभु! बहुत अन्याय होता है, अन्याय! पंचम काल के सन्त-मुनि, भेदज्ञानी, आहाहा! इस शुभयोग से भिन्न आत्मा को अनुभव करते हैं। आहाहा! ये तो पंचम काल के सन्त हैं; ये कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य कहीं चौथे काल के नहीं हैं। अरे..रे! ऐसी बात कहाँ? मस्तिष्क में—सिर में काम करे नहीं, दुनिया के चतुर भटक मरे हैं। आहाहा! भगवान कहते हैं—इस चैतन्य का जो ज्ञान है, (वह) अनन्त काल में एक सैकेण्ड भी नहीं किया है। आहाहा! एक सैकेण्ड भी राग से भिन्न भेदज्ञान का अनुभव करे, उसे अनन्त भव का अन्त आ गया। आहाहा! समझ में आया?

चैतन्यभाव को प्रत्यक्ष भिन्न अनुभव करते हैं.. यह चैतन्यस्वभाव जो अनन्त गुण गम्भीर भगवान (है), उसके सन्मुख के जोर के पुरुषार्थ से, धर्मी जीव, राग से भिन्न अनुभव करते हैं; इसलिए वह राग, आत्मा का नहीं; जड़ का है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव जड़ है - ऐसा कहते हैं। वहाँ तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है.. कि आहाहा! भाई! वह शुभभाव है। जैसे, सुवर्ण में कालिमा दिखती है; वैसे ही चैतन्य में यह मलिनता दिखती है, वह चैतन्य की चीज नहीं है। आहाहा! यह जिनवचन ऐसा कहते हैं अर्थात् भगवान और भगवान की वाणी ऐसा कहती है कि दया, दान, व्रत के परिणाम, वे जीव नहीं हैं; पुद्गल के परिणाम हैं। भगवान के (आत्मा के) परिणाम तो निर्मल होते हैं; (आत्मा) स्वयं निर्मल-पवित्र है, इसलिए उसके परिणाम तो वीतरागी निर्मल होते हैं। आहाहा! उस निर्मल परिणाम द्वारा धर्मी जीव, राग से भिन्न जीव का अनुभव करता है; इसलिए वह राग उसका नहीं है। आहाहा! इतनी शर्तें और इतना उत्तरदायित्व.. ऐसा है, प्रभु!

यह लोग फिर ऐसा प्रश्न करते हैं.. अभी सुना है वहाँ - सिवनी में प्रश्न किया है कि वे शिविर करके पाँच सौ लोग.. घासीलालजी गये थे न? तुम साधु को मानते हो? तुम चार अनुयोगों को मानते हो? और किसी ने कहीं कहा होगा, कौन जाने क्या कहा होगा और क्या माना होगा? वे लोग तो ऐसा कहते हैं कि ये साधु तो कुत्ते जैसे हैं, अभी ऐसी भाषा प्रयोग की है। ऐसा किसी ने कहा न हो न, तथापि लोगों ने सिवनी में यह बात सुनी थी। घासीलाल गये थे न, वहाँ ऐसा हुआ था। फिर उन्होंने तो समाधान किया, आज्ञाप्रमाण

मार्ग होता है, साधु तो साधु। साधु तो हम साधु को मानते हैं, साधु हो उसे न? आगम से विरुद्ध हो, वह साधु कहाँ है? चारों अनुयोग को मानते हैं। द्रव्यानुयोग में से उसकी दृष्टि हुई, वह तीनों अनुयोग को जानता है। दूसरे में यह व्रत और तप और विकल्प आया, उसकी बात करते हैं। परन्तु वह स्वयं धर्म नहीं है, ऐसा द्रव्यानुयोग की दृष्टि से वहाँ वाँचन करे तो उसका सार यह दिखायी दे। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न, कि द्रव्यानुयोग की दृष्टि होने के पश्चात् चरणानुयोग पढ़े तो उसकी—तत्त्व की दृष्टि की खबर पड़े। मोक्षमार्गप्रकाशक। आहाहा!

अरे, भगवान! यहाँ भगवान रहे नहीं, भगवान रहे वहाँ। अब भगवान ऐसा कहते हैं दुनिया को कहना—एक नहीं परन्तु अनन्त भगवन्त, तीर्थंकर अनन्त हो गये, अनन्त होंगे, संख्यात तीर्थंकर विचरते हैं, बीस, परन्तु इसके अतिरिक्त केवलज्ञानी लाखों-करोड़ों महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान में विचरते हैं। उन सभी केवलियों का वचन आगम है कि यह शुभराग मैल है। निर्मलानन्द प्रभु से वह पृथक् चीज़ है और मैल से निर्मलानन्द भगवान भी भिन्न है। ऐसा भगवान की वाणी कहती है, भगवान कहते हैं। और जैसे स्वर्ण की कालिमा भिन्न है, यह युक्ति, ऐसे स्वर्ण समान भगवान चैतन्यमूर्ति से पुण्य के परिणाम मैल, वे पृथक् हैं और स्वानुभव—राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञानी धर्मी जीव उसे कहते हैं, वह राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञानी जीव द्वारा चैतन्य स्वयमेव राग के अवलम्बन बिना अनुभव में आता है। इसलिए कितने ही कहते हैं न कि व्यवहार, निश्चय का कारण है। यहाँ तो कहते हैं कि उसके अवलम्बन बिना भेदज्ञान द्वारा (आत्मा) भिन्न दिखता है। आहाहा! कहो, शशीभाई! यह तुम्हारे वेदान्त-फेदान्त में तो ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! जैनदर्शन के नाम पर गड़बड़ चली है यहाँ।

आहाहा! **स्वयं उपलभ्यमानम्..** आत्मा तो स्वयं स्व के अवलम्बन की दृष्टि करने से राग से भिन्न स्वयं अनुभव में आता है, आहाहा! इसलिए भी राग को जीव नहीं—ऐसा भगवान कहते हैं, और आगम ऐसा कहता है और अनुभवी जीव भी (आत्मा का) राग से भिन्न अनुभव करते हैं; इसलिए राग से भिन्न है। आहाहा! अब, इतनी बात की अब। यह पहला बोल हुआ। आठ बोल हैं न?

(२) अनादि जिसका पूर्व अवयव है.. कर्म, कर्म.. **और अनन्त जिसका**

भविष्य का अवयव है.. अंश है अंश। कर्म का एक भाग.. **ऐसी एक संसरणरूप क्रिया..** चौरासी में परिभ्रमण की क्रिया, उसका कारण तो कर्म है—ऐसा अज्ञानी कहता है। कर्म के कारण उसके एक भाग से भटका और एक भाग से भटकेगा, इसलिए हमारे (तो) कर्म ही जीव है; भिन्न जीव है, यह हम नहीं जानते। आहाहा! अनादि जिसका पूर्व भाग है, अर्थात् कर्म का अवयव - एक अंश, **और अनन्त जिसका भविष्य का अवयव है — ऐसी एक संसरणरूप..** अनादि-अनन्त लिया.. ऐसा अनादि, ऐसा अनन्त। **एक संसरणरूप क्रिया के रूप में क्रीड़ा करता हुआ कर्म भी जीव नहीं है..** यह (अज्ञानी) कहता है कि वह (कर्म) जीव है; हमारे तो कर्म की क्रिया से परिभ्रमना-भटकता है, उससे अलग हमें तो दिखता नहीं—अज्ञानी ऐसा कहता है। उसके उत्तर में यह कहते हैं कि वह जीव नहीं है। कर्म के कारण जो परिभ्रमण की क्रिया दिखती है, वह जीव नहीं है। आहाहा! **क्योंकि कर्म से भिन्न अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव,..** इस परिभ्रमण की क्रिया के रागभाव से चैतन्यस्वभाव जीव भिन्न, आहाहा! **अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव, भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है,..** कर्म के कारण होती विकृति-परिभ्रमण का भाव, उससे आत्मा भिन्न है—ऐसा भेदज्ञानी द्वारा धर्मी जीव द्वारा.. यह कर्म के अवयवरूपी जो क्रिया, उससे भिन्न भेदज्ञानी द्वारा, धर्मी द्वारा, समकिती द्वारा भिन्न अनुभव किया जाता है। आहाहा! ऐसी बात! **(अर्थात् वे उसका स्वयं) प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।** दो बोल हुए।

तीसरा (बोल)—**तीव्र-मन्द अनुभव से भेदरूप होनेवाले दुरन्त राग-रस से भरे हुए अध्यवसानों की सन्तति..** राग मन्द और तीव्र, उसकी जो एकताबुद्धिरूप अध्यवसाय.. आहाहा! है ? **दुरन्त रागरस से भरे हुए..** राग से भरे हुए, जिसका अन्त कठिन है, ऐसे जो अध्यवसान, उनकी सन्तति **भी जीव नहीं है..** आहाहा! क्या कहते हैं ? राग की मन्दता और राग की तीव्रता की सन्तति / प्रवाह चलता है, वह जीव नहीं है, आहाहा! क्योंकि परिभ्रमण का कारण जीवद्रव्य नहीं है। यह कर्म के निमित्त से परिभ्रमण हुआ, वह जीवस्वरूप नहीं है। आहाहा! है ? **तीव्र-मन्द अनुभव से भेदरूप होनेवाले दुरन्त..** जिसका अन्त लाना कठिन है—ऐसे रागरस से भरे हुए अध्यवसानों से (भिन्न) **जीव भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे उसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।** आहाहा!

चौथा (बोल)—यह शरीर, शरीर है, वह जड़-मिट्टी का है। ऐसे कि **नयी..** दशा-

युवा अवस्था और **पुरानी अवस्था..** वृद्ध अवस्था, (जिसमें) सब हड्डियाँ कमजोर पड़ गयी। अज्ञानी कहता है कि हमारे तो यह शरीर है, वही आत्मा है। शरीर शिथिल हो तो हम कठोर काम नहीं कर सकते। जब शरीर मजबूत होवे, तब काम कर सकते हैं; इसलिए हमारे तो शरीर ही आत्मा है— आहाहा! ऐसे अज्ञानी, शरीर की क्रियाएँ हम करते हैं, यह हलन-चलन वह हमारी क्रिया है (—ऐसा मानते हैं।) परन्तु वह तो जड़ की क्रिया है, भाई! तुझे पता नहीं है। उसका उत्तर देते हैं—**नयी-पुरानी अवस्था..** नयी और पुरानी, ताजी अवस्था, ऐसे बालक जन्मता है न; युवा अवस्था—ऐसा मजबूत शरीर दिखायी दे और वह शरीर शिथिल पड़ जाए, चमड़ी लटक जाए—यह नयी और पुरानी अवस्था जो शरीर, वह हम हैं—ऐसा अज्ञानी कहते हैं। उन्हें उत्तर देते हैं। आहाहा! इस (नयी-) **पुरानी अवस्थादि के भेद से प्रवर्तमान नोकर्म शरीर भी जीव नहीं है..** आहाहा! यह युवा और वृद्ध अवस्था तो शरीर की अवस्था है; वह तेरी नहीं है, तू नहीं है। आहाहा!

तेरी अवस्था के तीन प्रकार (हैं)—बाल अवस्था, युवा अवस्था और वृद्ध अवस्था। इस राग की क्रिया को अपनी मानना, वह बाल अवस्था इसकी है, यह बालक है; वह चाहे तो लाख वर्ष की उम्रवाला शरीर हो, परन्तु वह राग को अपना मानता है तो वह बालक है और राग से भिन्न जानकर अन्तर-आत्मा को जो पहिचानता है, वह अन्तर का युवा है। आहाहा! और अन्तर में जाकर, स्थिरता करके केवलज्ञान प्राप्त करता है, वह वृद्ध है—यह तीन अवस्था इसकी है, यह (शरीर की) नहीं। आहाहा! लोगों को ऐसा कहाँ जँचता है? पूरे दिन शरीर से काम करता हो—यह लाओ, वह लाओ, पैसे गिने, दे-ले-दे, यह सब क्रिया मेरी है यह सब.. परन्तु प्रभु! वह तो जड़ है। जड़ की क्रिया तुझमें से नहीं और तुझसे नहीं। है? **क्योंकि शरीर से भिन्न अन्य चैतन्यस्वभावरूप जीव भेदज्ञानियों द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है, अर्थात् वे उसे प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।** आहाहा!

(पाँचवाँ बोल—) **समस्त जगत को पुण्य-पापरूप से व्याप्त करता..** देखा? पुण्य-पाप आया, शुभ-अशुभ राग उससे, **(वह) कर्मविपाक..** वह आत्मा का पाक नहीं है। आहाहा! आत्मा का पाक तो आनन्द और शान्ति उसमें पकती है। वह तो ऐसा खेत है कि जिसमें से अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति पके। आहाहा! इस पुण्य-पापरूप से व्याप्त करता (कर्मविपाक), **भी जीव नहीं है क्योंकि शुभाशुभभाव से भिन्न अन्य..** इस

शुभाशुभभाव से भिन्न **चैतन्यस्वभावरूप जीव भेदज्ञानियों द्वारा..** आहाहा! अरे..रे! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. यहाँ तो कहते हैं कि अभी शुभभाव—पंचम काल में तो शुभभाव ही होता है। अरे प्रभु! तो पंचम काल में धर्म नहीं होता? आहाहा! अरे! ऐसा अच्छा किया, छानबीन की! आहाहा! इस शुभाशुभभाव से अन्य-भिन्न भगवान तो अन्दर पुण्य-पाप के भाव से भिन्न, आहाहा! **चैतन्यस्वभावरूप जीव भेदज्ञानियों द्वारा स्वयं उपलभ्यमान है।** समकिती-भेदज्ञानी ऐसा स्वयं उसे प्रत्यक्ष - राग के अवलम्बन बिना, मति-श्रुतज्ञान द्वारा **प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं..** आहाहा! इसलिए ये पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव, जीव नहीं हैं। चार बोल हुए।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)